

## गुरु शिष्य परम्परा घराना एवं वर्तमान समय में उसकी आवश्यकता

डॉ०जया शर्मा

एसो०प्राफेसर (संगीत विभाग), आर्य कन्या पी०जी०कालिज, हापुड़, उत्तर प्रदेश।

**सारांश—** संस्थाओं में प्रतिभावान छात्र श्रेष्ठ गुरुओं से संगीत की परम्परागत तालीम लेकर उच्च कोटि के कलाकार बन सकेंगे। एक अन्य दृष्टिकोण मेरा यह भी है कि वर्तमान में अनेक विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में संगीत विषय के रूप में शामिल है यदि इन शिक्षण संस्थाओं में घरानेदार शिक्षा का समावेश कर लिया जाये तो संगीत कला और अधिक उन्नति के शिखर पर आसीन हो सकती है।

**मुख्य शब्द—**गुरु, शिष्य, घराना, संगीत, तालीम, विद्यालय, महाविद्यालय, शिक्षण।

गुरु शिष्य प्रणाली से विद्या का अध्ययन हमारी आदि परम्परा रही है। गुरु मुख से सुन समझ कर ही किसी भी विद्या का सही ज्ञान सम्भव है। यह तथ्य जितना स्पष्ट तब था, उतना ही अब भी है विषय चाहे कला का हो या विज्ञान, उसके सभी आयामों को जानने के लिए गुरु की अति आवश्यकता होती है। संगीत की शिक्षा के दृष्टिकोण से गुरु का महत्व और भी अधिक हो जाता है विभिन्न विधाएँ जो गुरुकृपा से प्राप्त होती है उसका वास्तविक ज्ञान कराने के लिए गुरु जो ढंग अपनाते हैं, वह उनका अपना विशेष होता है सांगीतिक भाषा में जिसे हम घराना कहते हैं और यही घरानेदार गायकी हिन्दुतानी संगीत की अपनी निजी और प्रमुख विशेषता है। राग वही है। लेकिन राग में लगने वाले स्वरों का प्रयोग बढ़त विस्तार गमक प्रयोग तान—आलाप सरगम मुखड़ा सम पर आमद आदि की भिन्नता ने गायन—वादन व नृत्य को अलग—अलग रंग प्रदान किया है जो घराना विशेष के नाम से प्रचलित हुआ, जिसका सही ज्ञान गुरु के मार्गदर्शन में ही प्राप्त को सकता है। संगीत का साधन मानवीय आवाज है जो मानव रूप की भाँति भिन्न—भिन्न है। यही आवाज योग्य गुरु द्वारा जब संस्कारित की जाती है और शिष्य भी जब निरन्तर अभ्यास से गुरु के मार्ग निर्देशन में गूँज लालित्य और स्निग्धता लाकर आवाज पर भिन्न—भिन्न अलंकारों के माध्यम से आवाज को स्वर का रूप देता है तब घरानों का आविर्भाव शुरू होता है।

अतः कह सकते हैं कि घराने ऐसे सम्प्रदाय का वर्ग है जिनके संस्थापकों ने अपनी मेहनत व लगन से संगीत साधना करके अपने कला—कौशल के बल पर प्रसिद्धि प्राप्त की तथा शास्त्रों पर आधारित संगीत में क्रियात्मक रूप से कुछ नवीन प्रयोग करके उसे अपनी मनोवृत्ति के अनुसार मधुर व आकर्षक बनाया और शिष्यों को सिखया जो अनेक पीढ़ियों की परम्परा से विशिष्ट घरानों के रूप में जाने लगी। यही परम्परा ने घरानेदार गायकी को आगे बढ़ाया, जिसमें रियाज यानि अभ्यास का कड़ा अनुशासन एवं सुर लगाने की एक मर्यादा रहती थी। शिष्य भी नम्र भाव से संगीत की कठोर साधना करते थे। गुरुजन भी शिष्यों की ग्रहण भाक्ति के अनुसार उनसे अभ्यास करवाते थे। आवाज बनाने लिए जो 'संस्कार' या 'सुर' पर रियाज करने का तरीका यहाँ बताया जाता था, वह वस्तुतः अपने में बड़ा स्वभाविक और वैज्ञानिक था, क्योंकि घरानेदार गायकी के लिए संस्कारित आवाज ही स्वीकार्य थी। निरन्तर के अभ्यास से स्वरों की सूक्ष्मता और सौष्टव का अनुभव अनायास ही हो जाता था और आवाज में घनता तथा वजन का निर्माण होता था और यह तभी सम्भव था, जब शिष्य एक ही गुरु के रंग में पूर्णतः सराबोर होता था, तब शास्त्रीय जमीन की तैयारी उनके गले में अनायास हो जाती थी। यह बात सही भी है। क्योंकि जब तक एक ही घराने में रहकर शिष्य के गले और कान पूर्णतः कुशल नहीं हो जाते, तब तक अभिजात संगीत की महीन और सूक्ष्म अदाकारी को शिष्य आत्मसात नहीं कर सकता। सात—आठ वर्षों तक ही गुरु की छत्रछाया में रहकर शिष्य अपने कान और गले की मर्यादा उनका गुण धर्म समझने योग्य हो जाता था। उसके बाद ही फिर अन्य गायकों या घरानों की हरकतें स्वर लालित्य और अच्छे—अच्छे तरीके अपने ढंग से गायकी में उतार लेता था, तभी गायकी में नित नवीनता बढ़ती जाती थी

हमारे संगीत में ऐसे अनेक नामी गायक हुए हैं, जिन्होंने तालीम किसी एक गुरु से ग्रहण की तथा अपनी गायकी का श्रृंगार किन्हीं अन्य घरानों की खूबियों से की, तभी उनकी गायकी अभी भी नित ताजगी लिए हुए दिखाई देती हैं।

जैसे मुश्ताक हुसैन खाँ साहब दक्षिण के ख्यातनाम ख्याल गायक बाल कृष्णबुवा, श्रीमती केसरबाई केरकर, मंजीर खाँ साहब आदि इसके उदाहरण हैं और यह सच भी है संगीत में केवल वे ही घराने और उनके गायक जीवन्त हुए, जिन्होंने संगीत की तालीम के बाद अपनी गायकी में खुशबू और विविध रंग भरने के लिए अन्य गुरुजनों और घरानों का भी प्रसाद बराबर ग्रहण किया। तभी उनकी गायकी बहती हुई सलिला की भाँति स्वच्छ और पारदर्शी बन पायी। गुरुओं के मार्गदर्शन और निरीक्षण-परीक्षण से गायकी खिले फूल की तरह महकती चहकती रही। अतः गुरु शिष्य परम्परा ही घरानों का आधार है और सत्य भी है कि जिन संगीत साधकों ने अपना सम्पूर्ण जीवन इस कला की साधना में लगा दिया, इसकी रक्षा करना उनका प्रथम कर्तव्य था। इसी कारण श्रृंगारानेदार गायकी का दूसरा नाम श्रृंगारानेदार संगीत पड़ा, जिसने हमारे संगीत को अन्य संगीत से अधिक प्रतिष्ठित समृद्ध और चौतन्यशील बना दिया। यही कारण है कि श्रृंगारानेदार संगीत वर्षों पुराना होकर भी आज प्रभावी और असरदार है। 'घरानेदार' संगीत ने न केवल संगीत को समृद्ध किया, बल्कि उसकी परम्परागत विद्या को बचाने में अमूल्य सहयोग दिया। श्री देशपांडे जी के शब्दों, "घरानेदार गायकी और अभिजात संगीत पर्यायवाची शब्द है, जो भी अभिजात याचि उच्च माना गया है जिसके कारण हिन्दुस्तानी संगीत उन्नति कर सका, विकसित हुआ, समृद्ध बन सका, वह सब इन घरानों की छत्रछाया में रहकर और आज भी हैं।" अतः यह तो सच ही है कि संगीत को परम्परागत विद्या को बचाने में निश्चय ही घरानों ने अमूल्य सहयोग दिया किन्तु धीरे-धीरे उससे बहुत सारी कठिनाईयों अनुभव की जाने लगी, जिन्हें हम निम्न बिन्दुओं में देख सकते हैं।

1. संगीत शिक्षा जन सामान्य की पहुँच से दूर हो गयी।
2. घरानेदार गुरु हर किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते थे।
3. यह संगीत शिक्षा पूर्णतः गुरु की इच्छा पर निर्भर थी एवं उनके मनोगत भावनों का सम्पूर्ण प्रभाव शिष्य पर पड़ता था।
4. यह तालीम सामने बैठकर ही दी जाती थी जितना ज्ञान गुरु देना चाहता था, उतना ही शिष्य पाता था, उससे अधिक नहीं।
5. घरानों की एक मर्यादा थी और रीति-रिवाज करने करवाने का तरीका था।

इस कठिन अनुशासन के होते हुए बहुत सी संगीत के 'घरानेदार' चीजें के साथ ही समाप्त हो रही थी, जो संगीत के विरासत की दृष्टि से शुभ संकेत नहीं था। संगीत सबके लिए सुलभ हो सकें, उसका क्षेत्र व्यापक बन सकें इस दिशा में पं० विष्णु नारायण भातखंडे तथा पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी का योगदान भुलाया नहीं जा सकता है। इन्होंने शास्त्रीय संगीत के विकास को पंख प्रदान किये। एक नया युग स्थापित किया तथा अनेक संगीत महाविद्यालयों की स्थापना कर संगीत का घरानेदार परम्परा से जोड़ने का अथक प्रयास किया। किन्तु विद्यालयों की शिक्षण प्रणाली में एक साथ अनेक विद्यार्थियों को संगीत की शिक्षा में संगीत के सुरों की शिक्षा थोड़ी बहुत तो दी जा सकती है, किन्तु गायकी की बारीकियों नहीं सिखाई जा सकती। जैसे दरबारी कान्हडा का धनिरे का लगाव तथा जयजयवंती का धनिरे का लगाव। राग पूरिया भारवा के स्वर एक जैसे हैं किन्तु उनको लगाने का तरीका 40-50 मिनट की कक्षा में सिखाना सम्भव नहीं हो सकता। आडाचारताल तथा घमार दोनों में समान मात्रा है किन्तु बजाने का तरीका अलग है जो कि केवल प्रैक्टिकल रूप में ही कई दिनों के अभ्यास से बताया जाना सम्भव रहता है। संगीत को ऊपरी तौर पर तो समझा जा सकता था। किन्तु संगीत की बारीकियां गुरु शिष्य परम्परा से ही उपलब्ध हो सकती हैं और किसी उपाय से नहीं। विद्यालयीन एवं महाविद्यालयीन शिक्षा में विद्यार्थी को गाना तो आ जाता है किन्तु श्रुति ज्ञान नहीं हो पाता, जोकि एक चिन्ता का विषय है। इसलिए इस कला की जानकारी के लिए जब तक अलग से किसी योग्य गुरु से लगातार कई वर्षों तक सामने बैठकर इसके गुर-न सीखे जाएँ, आवाज की तैयारी न की जाए, तब तक घरानेदार गायकी के कायदे रीतियां और विभिन्न स्वर संगतियों को शिष्य के गले में नहीं उतारा जा सकता। यह तो गुरुमुखी विद्या है। कदम कदम पर गुरु के मार्ग दर्शन की सख्त जरूरत रहती है। उपरोक्त अध्ययन से हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि पुरानी गुरु शिष्य प्रणाली के उत्तम संगीत का स्तर उँचा उठाना है तो उसी संगीत संस्थाओं की स्थापना होनी चाहिये, जिन्हें सरकारी आर्थिक सहयोग प्राप्त हो, कलाकारों को वहाँ आर्थिक चिन्ता न करनी पड़े और उसे सरकार का आश्रय प्राप्त हो। साथ ही शिष्यों के लिये छात्रवृत्ति की उचित व्यवस्था हो। ऐसी संस्थाओं में प्रतिभावान छात्र श्रेष्ठ गुरुओं से संगीत की

परम्परागत तालीम लेकर उच्च कोटि के कलाकार बन सकेंगे। एक अन्य दृष्टिकोण मेरा यह भी है कि वर्तमान में अनेक विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में संगीत विषय के रूप में भागमिल है यदि इन शिक्षण संस्थाओं में घरानेदार शिक्षा का समावेश कर लिया जाये तो संगीत कला और अधिक उन्नति के शिखर पर आसीन हो सकती है।

### संदर्भ सूची

1. संगीतमणि – डा० महारानी शर्मा
2. संगीत पत्रिका – डा० महारानी शर्मा
3. संगीतायन – डा० सीमा चौधरी